SEMESTER - 3

CC- 13

National Movement in India

- Unit -1 : Beginning of Indian nationalism

  Part -1

Vetted by :

प्रो० (डॉ०) सुरेंद्र कुमार

विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग

पटना विश्वविद्यालय, पटना

संपर्क : 09835463960

Presented by:

शिप्रा नंदन

अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग

पटना विश्वविद्यालय, पटना

संपर्क : 08604171178

nandan.shiprabhu@gmail.com

भारतीय राष्ट्रवाद का शुभारम्भ

* राष्ट्रवाद क्या है ?

-जाति,संस्कृति,भाषा आदि की समानता के आधार पर एक स्वतंत्र राष्ट्र बनाने की जनभावना जिससे प्रेरित होकर हम अपने राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों से श्रेष्ठ मानते हैं यही राष्ट्रवाद है। सामान्यतः यही राष्ट्रवाद की परिभाषा होती है,परन्तु वैसी स्थिति में क्या हो,जब एक देश में विभिन्न जाति,धर्म,सम्प्रदाय,भाषा,संस्कृति के लोग निवास करते हों ?

इसी मायने में हमारा देश भारत अन्य राष्ट्रों से भिन्न प्रतीत होता है,जहां अनेकता में एकता का सन्देश दिया जाता है। बात आधुनिक काल में भारतीय राष्ट्रवाद की कि जाए तो यह विशेष रूप से औपनिवेशिक सरकार के विरूद्ध राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में अभिव्यक्त हुआ। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन अपने ऐतिहासिक रूप में एकमात्र ऐसा आंदोलन है,जिसके ढांचे को आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है। इसमें राजसत्ता पर क्रांति के जरिए सम्पूर्ण वर्चस्व कायम नहीं किया गया बल्कि इसके विपरीत नैतिक,राजनीतिक और विचारधारात्मक इन तीनो ही स्तरों पर लम्बे जनसंघर्ष को चलाकर इसे हासिल किया गया है,जिसमे संघर्ष और शांति के दौर आते-जाते रहे। सार्वजनिक उद्देश्य का व्यापक आंदोलन किस प्रकार खड़ा किया जाता व चल्या जाता है,भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन संभवतः इसका एक सर्वोत्तम उदहारण है। क्योकि इस आंदोलन के अंतर्गत विभिन्न राजनीतिक विचारधारा वाली संस्थाए साथ -साथ काम कर रही थी और उनमे आपस में वर्चस्व की लड़ाई भी चल रही थी। इस आंदोलन में एक वक़्त के

बाद सभी को अपने विचार रखने की पूरी स्वतंत्रता थी व बहस ,राय -मशविरे के बाद ही फैसला लिया जाता था,जो कि इसकी एकता का परिचायक है।

* हमे अपने राष्ट्रीय गौरव पर विचार करना क्यों आवश्यक है?

- आज़ादी के लगभग ७२ वर्ष हो गए और इतने वर्ष बाद भी हमेशा अपनी आज़ादी को हम राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाते हैं। आखिर इसे राष्ट्रीय पर्व क्यों कहा जाने लगा,इस अतीत को जानना हर भारतीय का कर्त्तव्य है और हमे इसका विश्लेषण खुले दिमाग से करना चाहिए,क्योकि हमारे अतीत,वर्त्तमान और भविष्य इससे अविभाजित रूप में जुड़े हुए हैं ,किन्तु भविष्य की रणनीतियों को बनाने से पूर्व अतीत की आर्थिक,राजनीतिक ,सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं को जानना भी अतिआवश्यक है,क्योकि इतिहास शून्यता आधारित नहीं होता।

*राष्ट्रवाद / इतिहासलेखन में भारतीय राष्ट्र की विभिन्न विचारधाराएं क्या रही है ?

- राष्ट्रवाद या यूं कहें कि भारतीय राष्ट्रवाद को लेकर इतिहासकारों व इतिहासलेखन में हमेशा ही विचारधारात्मक अंतर्विरोध देखा गया है -

*साम्राज्यवादी इतिहासलेखन /दृष्टिकोण - लार्ड डफरिन,मिंटो,कर्ज़न जैसे वायसरायों और भारत सचिव हैमिल्टन के कार्यों में इस विचारधारा की झलक मिलती है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर जो सरकार के द्वारा अधिनियम पारित किये गए उनसे भी यह दृष्टिकोण प्रकट होता है। इनका मानना था कि भारत

में किसी भी क्षेत्र में चाहे आर्थिक,सामाजिक,राजनीतिक हो या सांस्कृतिक,किसी भी क्षेत्र में उपनिवेशवाद नहीं था। उनके कथनो में यह केवल विदेशी शासन था,जिसके बारे में लोगों ने गलत धारणा बना ली और उनके अच्छे कार्यों में भी नकारात्मकता दिखानी शुरू कर दी। यह खेमा रष्ट्रीय जागरण के पीछे उपनिवेशवाद ही कारन था उसे भी नकारता है और कहता है कि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ नकली लड़ाई लड़ रहे थे,जैसे कि दशहरे में कागज के पुतले झूठी लड़ाई लड़ते हैं और सबका मनोरंजन करते हैं।

साम्राज्यवादी इतिहासकार यह मानते है कि भारत कभी भी राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में नहीं था बल्कि उनका कहना था कि भारत को राष्ट्र जैसी अवधारणा से परिचित उनलोगों ने करवाया। भारत तो सिर्फ जाति,धर्म,समुदाय का समुच्चय भर था तथा उनमे एक `समुचित राष्ट्र` बनने की अवधारणा थी ही नहीं। भारतीयों की पहचान हिन्दू -मुसलमान,ब्राह्मण-गैरब्राह्मण,आर्य,भद्रलोक (सुसंस्कृत जन) आदि के रूप में की जाती थी। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के बारे में साम्राज्यवादी शासकों ने कहा कि यह कोई जन आंदोलन नहीं था बल्कि यह सिर्फ अभिजन वर्ग की आवश्यकता और हितों की अभिव्यक्ति थी,जिसका उपयोग उन्होंने संकीर्ण स्वार्थों के वशीभूत होकर किया था। आगे वे कहते है कि जो `राष्ट्रवाद` शब्द है उसका इस्तेमाल यही वर्ग अपनी संकीर्ण और स्वार्थी मनोकांक्षाओं की पूर्ति के लिए करता है। पूर्व के साम्राज्यवादी विचारक हताश शिक्षित मध्यम/उच्च वर्ग को "परोपकारी ब्रिटिश राज" के विरूद्ध राष्ट्रवाद का इस्तेमाल करने की बात करते हैं जबकि उनकी विचारधारा को आगे बढ़ाने वाले अनिल सील ने इसे अलग तरीके से बताने का प्रयास किया है। सील का कहना है कि ब्रिटिश सरकार की कृपादृष्टि

पाने के लिए ही भारतीय समुदाय का एक अभिजात वर्ग दूसरे अभिजात वर्ग के साथ संघर्ष करता रहा। उनका मानना है कि इन जो दो गुटों के बीच जो संघर्ष चल रहा था उसे ब्रिटिश राज ने और ,मजबूत और तेज कर दिया। इसका उदहारण देते हुए वे कहते हैं कि भारत में राष्ट्रवाद के मुद्दे को लेकर असल में जो दो भारतीय गुट लड़ रहे थे उनका सम्बन्ध मालिक असामी पर आधारित था जो एक-दूसरे के हितों के समर्थक भी थे और एक दूसरे के विरोधी भी। अब चूकि ब्रिटिश सत्ता पुरे भारत में थी,जिसके सफल सञ्चालन के लिए उन्हें स्थानीय लोगों की आवश्यकता थी और इसी स्थिति का लाभ उठाते हुए राष्ट्रीय स्तर के ठेकेदारों ने स्थानीय ठेकेदारों की सहायता से आसामियों को राष्ट्रीय आंदोलन में झोंककर अपनी स्वार्थ पूर्ति करना शुरू कर दिया और इसमें अग्रणी नेहरू,गाँधी और पटेल रहे। १९१८ के बाद इन लोगों ने मुद्रा स्फीति,मंदी,युद्ध,बीमारी,सूखा आदि की तरफ जनता का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की,जिसका उपनिवेशवाद से कोई लेना देना नहीं था। अनिल सील ने आगे कहा कि दूर से देखने पर जो राजनीतिक संघर्ष जान पड़ता है पास से उसका निरीक्षण करने पर पता चलता है कि वे या तो अपने पुराने समुदाय की रक्षा कर रहे हैं या उनकी स्थिति सुदृढ़ कर रहे हैं और इन्ही वजहों से यह चीन,जापान,मुस्लिम औरअफ़्रीकी देशों के राष्ट्रवाद से भिन्न हो जाता है।

यह सम्प्रदाय भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को सत्ता के लिए संघर्ष का एक बहाना मात्र मानता है। राष्ट्रवाद की अवधारणा में सन्निहित अस्तित्व व औचित्य को वे पूरी तरह नकारते हैं। यहाँ तक कि जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम अथवा राष्ट्रवाद से प्रेरित होकर अपने राष्ट्रवाद की पराधीनता को ख़त्म करने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी,उसे भी यह समुदाय नकारता है। इस पर टिप्पणी करते हुए सर्वपल्ली गोपाल

ने लिखा है कि "नेपियर पर यह आरोप लगाया गया था कि उसने राजनीती से अक़्ल को बहार निकाल दिया है लेकिन यह साम्राज्य उससे कई कदम आगे बढ़ गया है और इन्होने न केवल दिमाग को भारतीय राजनीति से अलग कर दिया है बल्कि शालीनता,चरित्र,ईमानदारी,निःस्वार्थ प्रतिबद्धतता को भी उससे बहार कर दिया है।" महिलाओं,किसानों,मजदूरों को तो ये मूकबधिर शिशु की भांति मानते थे,जिसमे स्वविवेक या स्वैच्छा थी ही नहीं बल्कि सुविधा संपन्न वर्ग उन्हें अपने अनुसार इस्तेमाल करते थे। यहाँ इन इतिहासकारों/विचारकों पर सबसे बड़ा सवाल उठता है कि अगर ऐसी स्थिति थी तो फिर वे १९४७ में भारत को छोड़कर जाने पर मजबूर क्यों हुए ?